P: ISSN NO.: 2394-0344
E: ISSN NO.: 2455-0817
Remarking An Analisation
Title Code : UPBIL04788
Vol-I * Issue-VI* July - 2016

संस्कृत साहित्य में धर्म तत्व

अंजलि यादव
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
ज्वाला देवी विद्या मन्दिर
स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कानपुर

सारांश

धर्म, मजहब अथवा रिलिजन की व्याख्या करना एक टेढ़ी खीर है। 'धृ' धातु से निष्पन्न 'धर्म' शब्द का अर्थ कर्तव्य–निर्वहन है जिससे लोक अर्थात् समाज नियमित होता है। 'अथर्ववेद' में धर्म शब्द धार्मिक क्रिया संस्कार करने से अर्जित गुण के अर्थ में आया है। ऐतरेय ब्राह्मण में इसे धार्मिक कर्तव्यों के लिए प्रयुक्त किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद् में 'धर्म' शब्द यज्ञ, दान, तपस्या, अध्ययन, तथा ब्रह्मचर्य अर्थ में प्रयोग किया गया है।

भारतीय संस्कृति की अवधारणा के अनुसार लोक को धर्म, अर्थ काम आर मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहकर जीवन सुख की अभिलाषा रखनी चाहिए। इस प्रकार मानव मात्र के लिए 'धर्म' का एक ऐसा नियंत्रण या अकुंश रहा है जिसके द्वारा मनुष्य अपने सामाजिक जीवन का निर्वहन करता है। प्राचीन काल में समस्त सामाजिक संगठनों की मर्यादा का आधार धर्म ही रहा है। इसलिए इसे ''धरति लोकं'' कहा गया है, अर्थात् 'लोक' जिसे धारण करें, जो समग्रतः व्यवहार्य एक नैतिक नियम स्वरूप प्रतिष्ठित हो। इस पकार सच्चे धर्म के धरातल पर पहुँचते ही आपसी मतभेद, सभी प्रकार के कलह और वैमनस्य सहसा लुप्त हो जाते है।

मुख्य शब्द : धर्म,सम्प्रदाय,भारतीय–संस्कृति,राष्ट्रीय–एकता,विश्वबन्धुत्व

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति की अवधारणा के अनुसार लोक को धर्म, अर्थ, काम ओर मोक्ष की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहकर जीवन–सुख की अभिलाषा रखनी चाहिये। इस प्रकार मानव मात्र के लिये 'धर्म' एक ऐसा नियन्त्रण या अंकुश रहा है जिसके द्वारा मनुष्य अपने सामाजिक जीवन का निर्वहन करता है। बदलते हुए युग और उसके परिवेश के साथ धर्म शब्द का अर्थ परिवर्तित एवं संशोधित होता रहा है। धर्म का बहुप्रचलित अर्थ है सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनयिक कर्तव्य–इसी को एक शब्द धर्म में समाहित किया गया है। यही कारण है कि जिस आचरण द्वारा लोक समाज की अभ्युन्नति हो, उसके कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सके, वही धर्म की परिधि में स्वीकार किया गया–

''यतो अभ्युदयो निःश्रेयः सः धर्मः''[1]

प्राचीन काल में समग्र सामाजिक संगठनों की मर्यादा का आधार धर्म ही रहा है। इसलिये इसे ''धरति लोकं'' कहा गया है, अर्थात 'लोक' जिसे धारण करे, लोक जिसका आचरण करे, जो समगतः व्यवहार्य एक नैतिक नियम स्वरूप प्रतिष्ठित हो।

सुख की अभिलाषा सभी करते हैं, किन्तु वास्तविक सुख तभी प्राप्त होता है, जब वह धर्माश्चरित हो, धर्माचरण से प्राप्त किया गया हो। इसी कारण कहा जाता है कि सदैव धर्म का पालन करना चाहिये। अभ्युदय एवं निःश्रेयस का साधन धर्म ही है तथा मोक्ष का साधन भी धर्म है।

संस्कृत में धर्म शब्द 'धृ' धातु से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है–धारण करना, पालन करना, आश्रय लेना–

''धरति लोकोऽनेन धरति लोकं वा,
धरति विश्वं इति,धरति लोकान्धियते वा जनैरिति''[2]

शास्त्रों में **''धारणाद् धर्मः''** कहकर इसकी व्याख्या की गई ह अर्थात जो हमे सब तरह के विनाश एवं अधोगति से बचाकर उन्नति की ओर ले जाये।

धर्म वस्तुतः मानव के द्वारा अपनाया जाने योग्य एक ऐसा जीवन मार्ग है, जिस पर चलता हुआ मानव अपना और दूसरे का हित साधन कर सकता है। डॉ0 राधाकृष्णन् ने धर्म का स्वरूप स्पष्ट करते हुये लिखा है –'' कि धम सम्पूर्ण जीवन की पद्धति है। वह नश्वर में अविनश्वर तथा अचिर में चिर का अनुसंधान है। धर्म जीवन का स्वभाव है।''[3]

एक अन्य स्थान पर राधाकृष्णन ने लिखा है –''धर्म चारों वर्णों और चारों आश्रमों के सदस्यों द्वारा जीवन के चार पुरूषार्थों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में पालन करने योग्य मनुष्य का समूचा कर्तव्य है।''[4]

P: ISSN NO.: 2394-0344
E: ISSN NO.: 2455-0817
Remarking An Analisation
Title Code : UPBIL04788
Vol-I * Issue-VI* July - 2016

धर्म ही एक ऐसा पथप्रदर्शक है जो हमें हर समय सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता रहता है। मनु ने धर्म के महत्व का प्रतिपादन करते हुये लिखा है कि नष्ट हुआ धर्म ही मनुष्य का नाश करता है सुरक्षित धर्म ही मनुष्य की रक्षा करता है। इसलिये धर्म को नष्ट नहीं करना चाहिये, जिससे नष्ट हुआ धर्म हमे नष्ट न कर दे।[5] ''धर्म ही एक ऐसा मित्र है जो मरने पर साथ जाता है अन्य सब कुछ तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाता है।''[6]

वाल्मीकि रामायण में भी धार्मिक आस्थाओं के विविध रूप दृष्टिगाचर होते है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी धर्म की विस्तृत व्याख्या की गई है – भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।[7]
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्।। 4/7
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।[8]
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।। 4/8

संस्कृत महाकाव्य में महाकवि कालिदास ने गुप्तयुगीन परमभागवत विरूदधारी सम्राटों के सदगुणों से सम्भवतः प्रभावित होकर जिन रघुवंशीय प्रतापी सम्राटों का प्रारम्भ से ही वैशिष्ट्य वर्णित किया है, उन पर भागवत् धर्म का पूर्ण प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है। वर्णाश्रम एवं गृहस्थ धर्म, नारीसमादर–भावना आदि के साथ यथास्थान कवि ने भगवान विष्णु के स्वरूप, महात्म्य आदि का भक्ति पूर्वक स्मरण करते हुए भागवत धर्म के प्रति समादर व्यक्त किया है।

विदुर का लोक धर्म अत्यन्त व्यापक शाश्वत तथा लोक कल्याणकारी है जो क्षमा, संतोष, अहिंसा पर आधारित है।

प्राचीन काल से ही हमारा देश धर्मप्रधान रहा है। इस देश का इतिहास त्यागी एवं तपस्वी व्यक्तियों की पावनगाथा से भरा पड़ा है। महर्षिदधीचि ने परहित धर्म के पालन हेतु अपनी अस्थियां तक दान कर दीं। राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य धर्म के पालन हेतु अपना राजपाट तथा परिवार तक त्याग दिया। प्राचीन अवधारणा के अनुसार– राजा को स्वयं अपना कोई हित प्रिय नही रखना चाहिये उसे केवल प्रजा का हित ही ध्यान में रखना चाहिये।

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हितेहितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तुप्रियं हितम्।।[9]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कहा गया है–राजा का कर्तव्य धर्म तथा सामाजिक व्यवहार पर एक उचित सीमा तक नियमन स्थापित करना था।

धर्म के ज्ञान के साथ ही धर्मग्रन्थों का ज्ञान भी आवश्यक है। मानवसभ्यता के विकास के साथ ईश्वर की सत्ता स्थापित हुई। ईश्वर के कथन धर्मग्रन्थों में समाहित हुए। वेद, बाइबिल, कुरान आदि धर्मग्रन्थ कहलाते हैं। अव्यक्त ईश्वर के स्थान पर धर्मग्रन्थों की आराधना एवं उपासना प्रचलित हुई। आस्था के अंधियारे में ऐसे ग्रन्थ के प्रति मानव श्रद्धा से भर उठता था उसमें देववाणी थी। ग्रन्थ की पूजा होती थी ग्रन्थ में जो कुछ लिखा है वह पत्थर की लकीर एवं इन ग्रन्थों की अपरिमित शक्ति थी। वस्तुतः ये धर्मग्रन्थ धर्म के पर्याय के रूप में पूजनीय थे। इनमें जो लिखा है उसका खण्डन करने वाला अधर्मी व पापी कहलाता था। मानव चेतना पर इनका प्रभाव आश्चर्यजनक था। आज भी धर्मग्रन्थों का प्रभाव और आधिपत्य बना हुआ है।

उद्देश्य

भारतीय संस्कृति, धर्म एवं जीवन–दर्षन से, प्रभावित समस्त भारतीय जातियों के जीवन का उद्देष्य और आकांक्षायें अभिन्न हैं। ऋषि मुनि, दार्षनिक, मनीषी अवतार एक है। साहित्य और कला की परम्पराएँ तत्वतः एक है। अखण्ड राजनैतिक एकता संरक्षित होकर इन समान सांस्कृतिक एवं धार्मिक विषिष्टताओं से राष्ट्रीय एकता ही परिपुष्ट होती है।

भारतीय संस्कृति में धर्म के नाम पर नरसंहार के विपरीत धार्मिक सहिष्णुता की परम्परा का वचस्व रहा है। मूर्ति–भंजक मुस्लिम शासकों के मध्य भी अकबर जैसा सम्राट और दाराशिकोह जैसा राजकुमार हुआ। कबीर और नानक जैसे महान संतों ने प्रेम और दया, धर्म तथा विश्व–बन्धुत्व के उपदेश दिये। बड़े बड़ आचार्य जिन्होंने ईश्वर के प्रकाश को मनुष्यों के हृदय तक पहचाया, किसी एक धर्म, समाज, मठ या मन्दिर के होकर नहीं रहे क्योंकि उनके लिये सम्पूर्ण ससार ही मन्दिर था और सभी प्राणियों व जीवों का कल्याण ही उनका उद्देश्य था।

निष्कर्ष

इस प्रकार यह स्वीकार कर लिया जाता है कि मूल में सब धर्म एक रूप है। सब का एक ही ध्येय है– मानव की आत्मा का पूर्ण विकास जिससे वह सच्ची शान्ति अथवा मोक्ष या निर्वाण प्राप्त कर सके। मनुष्य की यह महत्वाकांक्षा इतनी प्रबल और सारगर्भित है कि दैनिक जीवन म इससे बढ़कर हमारा पथ–प्रदर्शन और कोई भावना नहीं कर सकती। इसके साथ ही यह भी वास्तविकता है कि सच्चे धर्म के धरातल पर पहचते ही आपसी मतभेद सभी प्रकार के कलह और वैमनस्य सहसा लुप्त हो जाते हैं।

अतः भारतीय धर्म एवम संस्कृति, सहिष्णुता, उदारता, करूणा, त्याग, क्षमा, विश्वबन्धुत्व आदि दिव्य धार्मिक गुणो पर आधारित होने के कारण हिंसापूर्ण विघटनकारी दुष्प्रवृत्तियों को चुनौती देते हुये हमें अपनी राष्ट्रीय भावात्मक एकता एवं अखण्डता को अवश्य अक्षण्ण बनाये रखना चाहिये जिससे हम संसार को अपनी यह मंगल कामना सुना सकें–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चित् दुःखभाग्भवेत्।।[10]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कणाद वैशेषिक दर्शन–1/2
2. अमर कोष–1/6/3
3. संस्कृति के चार अध्याय श्री रामधारी सिंह दिनकर पृष्ठ–563
4. धर्म और समाज–डा0 राधाकृष्णन्, पृष्ठ–123
5. धर्म एवं हतो हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
   तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।
   मनुस्मृति, 8/15
6. एक एव सुहृद्धर्भो निधनेऽव्यनुयातियः।
   शरीरेण समं नाशं सर्वमन्य द्विगच्छति।
   मनुस्मृति,8/17
7. श्रीमद्भगवद्गीता–4/7
8. श्रीमद्भगवद्गीता–4/8
9. अर्थशास्त्र 1.19.16
10. संस्कृत साहित्य का इतिहास – श्री बलदेव उपाध्याय